गरीबी उन्मूलन में स्वयं सहायता समूहों की भूमिकाः समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ0 अनूप कुमार सिंह
एसो0 प्रोफे0, समाजशास्त्र विभाग
डी.ए.वी. कालेज, कानपुर
ई–मेल–dr.anoopsinghdav@gmail.com

सारांश

गरीबी एक निश्चित समाज में परिवारों की जटिल सामाजिक–आर्थिक दषा है। यह सामाजिक निर्धारक भी है क्योंकि यह न केवल वर्ग और परिवार की संरचना बल्कि सामाजिक मूल्य एवं मनोवृत्तियों के आधार पर भी निर्धारित होती है। यह आर्थिक अपर्याप्तता एवं सामाजिक एवं आर्थिक बहिष्कार की दशा भी है। चारों ओर फैली हुई गरीबी के अनेक जटिल कारण हैं। इसे कारण और कार्य सम्बन्धों के संयोग द्वारा भी स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। अपर्याप्त प्राकृतिक साधन, इन साधनों के विकास के लिए कौशल, शिल्प, विज्ञान व प्रोद्यौगिकी और पूँजी की कमी, प्रेरणा का अभाव, श्रम के परिणामों का वचन और शोषण आदि परम्परागत रूप से गरीबी के कारण माने जाते हैं। अनुभव से पता चलता है कि स्पष्ट दिखाई देने वाले कारणों को हटा देने के बावजूद गरीबी बनी रह सकती है।

गरीबी की अवधारणा एवं कारणात्मक व्याख्या विस्तारित हुई है। गरीबी को परिभाषित करने वाली उपभोग/आय उपागम आलोचनात्मक परीक्षण के दौर में है विद्वानों द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि गरीबी के विश्लेषण को और अधिक विस्तारित परिदृश्य में सामुदायिक सम्पत्ति संसाधन और वस्तुओं के लिए राज्य के उपबंधों को सम्मिलित करना चाहिए। साथ ही सम्पत्ति का अभाव, गरिमा एवं स्वायत्तता भी गरीबी के निर्धारक हो सकते है।

गरीबी के अन्तर्गत तीन परिप्रेक्ष्य सन्निहित है। पहला आनुभाविक पक्ष है जिसकी मान्यता है कि वेतन इतना होना चाहिये, जिससे जीवन और दक्षता को सहेज सकें। मूल्य परिप्रेक्ष्य की मान्यता है जो तार्किक रूप से आवश्यक है वो प्राप्त होना चाहिये। तीसरा पक्ष तुलनात्मक वंचन का है। जो असमानता का परिणाम है सभी क्षेत्रों एवं प्रत्येक समय गरीबी की अवधारणा का उचित निरूपण हो ऐसा कोई पैमाना नहीं है। गरीबों की शिनाख्त गरीबी की परिभाषा पर निर्भर करती है। गरीबी की लगभग सर्वमान्य परिभाषा यही है कि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो आवश्यक आय है वह न उपलब्ध हो तथा मानवीय गरिमा को बनाये रखते हुये निम्न जीवन स्तर को भी न प्राप्त किया जा सके।

समाजशास्त्री टाऊनसेन्ड (1979) ने पूर्ण और तुलनात्मक गरीबी में कोई अन्तर नहीं किया है। क्योंकि वे मानते हैं कि गरीबी, वंचन का सामान्य स्वरूप है और संसाधनों का गैर

बराबरी पूर्ण वितरण है। 1962 के योजना आयोग के एक अध्ययन समूह के अनुसार भोजन पर खर्च के अतिरिक्त उपभोग खर्च पर यदि 20 प्रति व्यक्ति प्रतिमाह 1960–61 के मूल्य के अनुसार खर्च करता था तो वो गरीबी रेखा से नीचे था।

दांडेकर और रथ ने राष्ट्रीय नमूना प्रतिदर्श सर्वेक्षण के अनुमान से प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 200 कैलोरी द्वारा अनाज या अन्य विकल्प से ग्रहण करता है तो गरीब नही हैं। छठी पंचवर्षीय योजना के अनुसार गरीबी रेखा के नीचे वह लोग है जो ग्रामीण समाजों में 2400 कैलोरी प्रति व्यक्ति एवं 2100 कैलोरी शहरी क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति से कम उपभोग करते हैं।

बाल्च (1996) ने गरीबी की अवधारणा को और उसके परास को तय करते हुए एक गरीबी पिरामिड बनाया है। पिरामिड के प्रथम पंक्ति में सीमित परिभाशा है एवं पंक्ति 6 में विस्तारित परिभाषा दी गई है।

अब इस विस्तार के अंतर्गत उपलब्धता, सामुदायिक सम्पत्ति, संसाधन, राज्य प्रदत्त सुविधाएँ, सम्पत्तियाँ गरिमा और स्वायत्ता को भी सम्मिलित किया गया है।

गरीबी अवधारणा का पिरामिड

PC 1

PC + CPR 2

PC + CPR + SPC 3

PC + CPR + SPC + Assets 4

PC + CPR + SPC + Assets + Dignity 5

PC + CPR + SPC + Assets + Dignity + Autonomy.....6

स्रोत : बाल्च (1996)

गरीब कौन ?

बहुत सारे गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए यह शिनाख्त करना मुश्किल है कि गरीब कौन है? यह अवलोकित किया गया है कि गरीबी की परिघटना सरकारी/निजी क्षेत्र में नियमित रोजगार की तुलना में अस्थायी श्रमिकों में अधिक देखी जाती है। लिंग की दृष्टि से पुरूषों की तुलना में महिलाओं में गरीबी अधिक देखी जाती है। भूमिधरी की दृष्टि छोटे एवं सीमान्त किसान तथा भूमिहीन कृषि मजदूरों में इसको परिलक्षित होते देख सकते हैं। सामाजिक समूहों की दृष्टि से अनुसूचित जाति/जनजाति में गरीबी की मार अन्य समूहों की तुलना में अधिक दिखाई देती है।

उपर्युक्त सामाजिक समूहों में गरीबी को निम्न आवासीय दशा, निम्न स्वास्थ्य दशा, स्वच्छ जल एवं स्वच्छता का अभाव, बाल श्रम एवं स्कूल छोड़ने की घटनाएं आदि में देखा जा सकता है। ये घटनाएं निम्न आय एवं निम्न मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग का परिणाम है। गरीबी की उपर्युक्त आर्थिक एवं गैर–आर्थिक विमाओं में पारस्पारिकता है और गरीबी के दुष्चक्र की ओर

ये धकेलती है सरकार और समाज तथा सिविल सोसाइटी की सबसे बड़ी चिन्ता गरीबी के आर्थिक कारणों को दूर करना मात्र नहीं बल्कि सूक्ष्म ऋण उपागम द्वारा उनमें क्षमताओं का निर्माण करना है।

गरीबों के दुष्चक्र का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

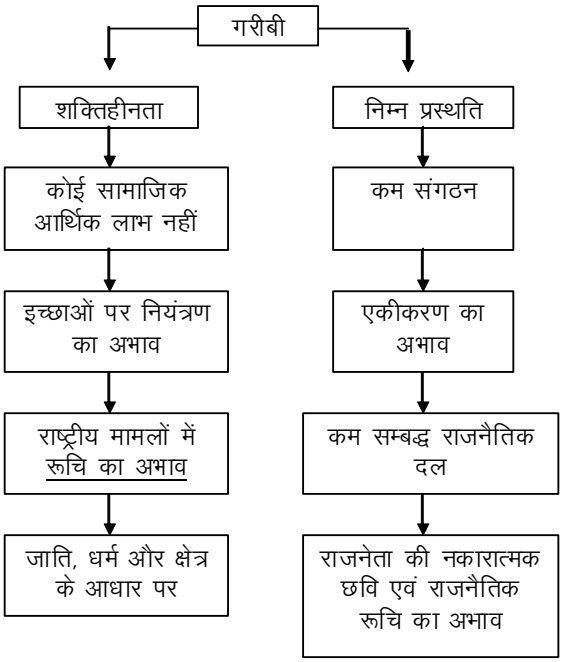

गरीबी उन्मूलन और स्वयं सहायता समूह की आय उपार्जक गतिविधियाँ एक दूसरे से सम्बन्धित है। क्योंकि गरीबी का चक्र एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता है और लोगों के जीवन स्तर को बढ़ाये बिना इस दुष्चक्र को तोड़ा नहीं जा सकता है।

गैर सरकारी संगठन और स्वर्ण जयन्ती स्वरोजगार योजना द्वारा सृजित स्वयं सहायता समूह विशेषकर आजकल राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन द्वारा सृजित स्वयं सहायता समूह निश्चित रूप से गरीबी उन्मूलन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। इन स्वयं सहायता समूहों द्वारा महिला समूहों को स्वावलम्बन एवं आर्थिक आजादी मिलती है।

वस्तुतः वित्तीय समावेशन के बिना गरीबी को दूर नहीं किया जा सकता। माइक्रोफाइनेन्स (सुक्ष्म वित्त) की अवधारणा को एफ0ए0 बाउंमन की पुस्तक के शीर्षक ''स्माल, शार्ट और अनसेक्योरेड (1990) के द्वारा उचित रूप से व्याख्यायित किया जा सकता है इस अवधारणा को 'गरीब परिवारों को उनकी उत्पादक गतिविधियों में छोटे ऋण द्वारा सहायता पहुंचाना'' द्वारा समझा जा सकता है। समय के प्रवाह में सूक्ष्मवित्त के अन्तर्गत साख, बचत और बीमा आदि को भी सम्मिलित किया गया है।

सूक्ष्म वित्त का सफलता सूचकांक 'साख उपागम' में तय होता है। जहाँ मात्र साख प्रदान करने पर बल नहीं बल्कि इसे विकासात्मक गतिविधियों में भी इसका उपयोग हो इस पर भी बल दिया जाता है। आज सूक्ष्म वित्त अप्राप्त गरीबों तक अपनी पहुंच बनाने एवं जननीति का महत्वपूर्ण हिस्सा बनता जा रहा है।

लाभ के दौड़ में सांस्कृतिक लागत को कम करने की आवश्यकता है। इस प्रक्रिया में विभिन्न क्षेत्रों का स्वाभाविक रूप से वित्तीय जाल से बाहर जाना हुआ है। सम्पूर्ण विश्व में वित्तीय संस्थाओं का प्रयास वित्तीय बहिष्कार से बाहर निकालकर लोगों को वित्तीय जाल में लाना है। गरीब व्यक्ति के लिए वित्त सब कुछ है यह उसे दैनिक समस्याओं से बचाता है। लेकिन योजनाकर्ताओं के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने का अर्थ अच्छी अर्थशास्त्र नहीं है। बहुत अधिक विकसित समाज में भी उपयुक्त औपचारिक व्यवस्था से एक बड़ी जनसंख्या वंचित हो सकती है। संस्कृति भी इसका कारण हो सकता है परन्तु इसकी स्पष्ट व्याख्या स्थानीय संदर्भों में अल्पविकास है।

अर्मत्य सेन की पात्रता की अवधारणा इसमें महत्वपूर्ण है। मात्र आपूर्ति हस्तक्षेप से आम अवसरों का सष्जन नहीं होगा।'' कार्यप्रणाली को स्थान मिलना चाहिए तकनीकी प्रोद्यौगिकी को कार्य में लगाना इतना सरल नहीं है बल्कि यह सन्निहित है, संस्थापमक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक रूप से।

अब तक सरकार द्वारा क्रियान्वित गरीबी–उन्मूलन कार्यक्रमों के दो ही उद्देश्य रहे हैं एक स्व रोजगार और मजदूरी रोजगार का सृजन दूसरा गरीब ग्रामीणों के लिए भोजन सुरक्षा। ग्रामीण भारत में गरीबों में भी गरीब महिलाएं हैं। स्वयं सहायता समूहों द्वारा गरीबी के नारीकरण को भी रोका जा सकता है।

स्वयं सहायता समूह 10–20 समरूपी गरीब लोंगों का एक समूह है। इसके सदस्यों द्वारा इसे नियन्त्रित एवं प्रबन्धन किया जाता है। एक संचित निधि में बचत के रूप में योगदान इसकी आवश्यकत शर्त है। संगठन की आत्मा पारस्परिक सहमति है। इनका अपना नियम और नियमन है स्वयं सहायता समूह के आदान–प्रदान में पारदर्शिता एवं जवाबदेही रहती है। इनका सृजन बैंकों, स्वयं सहायता समूहों एवं सरकारों द्वारा किया जाता है।

कुछ स्वयं सहायता समूहों का बैंक से जुड़ कर कार्य है और कुछ का विकासात्मक जुड़ाव है प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दो तरीके से एस0एच0जी0 माडल्स होते हैं। इसे स्वीकार करना प्रोत्साहनकर्ता पर निर्भर करता है। स्वयं सहायता समूह का मूल उद्देश्य पारम्परिक सहायता, बचत लघु उद्यम को बढ़ावा देना है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एन0आर0एल0एम0)

भारत सरकार द्वारा एस0जी0एस0वाई0 और एन0आर0एल0एम0 के संयोजन से 3.50 करोड़ ग्रामीण परिवारों को एक निश्चित समय में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जा चुके है।

एन0आर0एल0एम0 ने एस0जी0एस0वाई0 को विस्थापित किया है अर्थात् वित्तीय उपागम के स्थान पर ''आजीविका उपागम'' को स्वीकार किया गया। एस0जी0एस0वाई (स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना) का मुख्य बल आय उपार्जक गतिविधियों पर है। गरीबी के अनेक आयामों जिसमें सम्पत्याँ, कौशल, आय, उपभोग और जोखिम तक विस्तार एन0आर0एल0एम0 में किया गया है।

जोखिम प्रबन्धन उत्पादक गतिविधियों में स्वयं सहायता समूह फेडरेशन एवं गरीबों को सहयोगी सेवाओं की प्राप्ति के लिए उत्पादक संघ बनाये गये हैं।

एन0आर0एल0एम0 ने जिला एवं विकास खण्ड स्तर तक अपना विस्तार किया है। इसे ''सघन विकास खण्ड रणनीति'' के रूप में जाना जाता है। वस्तुतः गरीबी उन्मूलन की दिशा में एन0आर0एल0एम0 के चार स्तम्भ हैं (1) सामाजिक समावेषन (2) वित्तीय समावेशन (3) आर्थिक समावेशन (4) सामाजिक सुरक्षा

वित्तीय सहायता सब्सिडी के माध्यम से दिया जाना स्वयं सहायता समूह के लिए एक ''बीज पूंजी'' की तरह है। इनके व्यक्तिगत या सामूहिक परियोजनाओं को वित्तीय मदद करके उनके संस्थापक एवं वित्तीय मदद करके उनके संस्थापक एवं वित्तीय प्रबन्धन क्षमता को मजबूत करता है।

गरीबों की वित्तीय क्षमताओं को मजबूत करने के लिए नये–नये प्रयोग किये गये। स्वास्थ्य बचत और स्वास्थ्य जोखिम फंड बनाये गये।

आनुभविक अवलोकन बताता है कि जिस समय स्वयं सहायता समूहों का निर्माण प्रारम्भ हुआ 72 प्रतिशत अत्यधिक गरीब लोग थे। 38 प्रतिशत लोगों के पास भूमि ही नहीं थी। वो सभी लोग समूह में कार्य करने के बाद गरीबी रेखा से ऊपर आ गये हैं। जहां पहले भोजन, पोषण, जल आदि का संकट था साथ ही नवजात शिशुओं की मृत्यु हो जाती थी, इनमें गुणात्मक और परिमाणात्मक सुधार आया है। यहां तक कि एस0एस0जी0 में रोजगार सृजन के कारण गरीबी के दुष्चक्र से मुक्त होकर लोगों का पलायन भी रूका है।

अध्ययन बताते हैं कि स्वयं सहायता समूहों के कारण ही उत्पादक सम्पत्तियों, आजीविका के साधनों, स्वयं के आजीविका स्रोतों का सृजन हुआ है। 94 प्रतिशत एस0एच0जी0 सदस्यों का मानना है कि उनकी बचत की आदतों में बढ़ोत्तरी हुई है। 89 प्रतिशत का मानना है कि ब्याज मिलने में कोई समस्या नहीं है। औपचारिक संस्थाओं तक पहुँच बढ़ी है और महाजनों का सूदखोरों पर निर्भरता समाप्त हुई है। स्वयं सहायता समूहों ने विशेषकर महिलाओं को विभिन्न तरीके से सशक्त किया है। महिलाओं को न केवल आर्थिक संसाधनों पर उपलब्धता प्रदान करायी, बल्कि निर्णय प्रक्रिया में उनकी सहभागिता भी बढ़ाई है स्वयं सहायता समूह विकास के प्रतिनिधि की भॉति भारत की विकास प्रक्रिया में जमीनी स्तर पर बदलाव ला रहे हैं महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों ने गृहणी से संगठनकर्ता, प्रबन्धक और निर्णय प्रक्रिया में सहभाग वाला बना दिया है।

महिलाओं को उचित साख प्रदान करने से प्रारम्भ हुआ एस0एच0जी0 आन्दोलन महिला सशक्तीकरण आन्दोलन में बदल गया। जिससे सामूहिकता पारस्परिकता एवं सद्भाव के साथ ग्रामीण गरीबी उन्मूलन में महत्वपूर्ण भूमिका का प्रतिपादन हो रहा है।

भारत देश में 2005–06 में 21 लाख एस0एच0जी0 थे एवं 4.83 लाख एस0एच0जी0 ऐसे थे जो बैंकों से सहयोग प्राप्त कर रहे थे। अभी नाबार्ड (2017) के अनुसार भारत में 2.2 करोड़ एस0एच0जी0 है, जिसकी सदस्य संख्या लगभग 33 करोड़ है। स्वयं सहायता समूहों ने आय और रोजगार सृजन गतिविधि की दिशा में अपेक्षित परिणाम दिये हैं। उपार्जक गतिविधियों को संगठित करने लोगों के आय के स्तर एवं बचत के स्तर को बढ़ाने में महती भूमिका का निर्वाहन किया है।

स्वयं सहायता समूहों का गठन उचित सहभागिता उपागम है। जिससे विशेषकर ग्रामीण गरीबी का उन्मूलन पूर्णतया सम्भव है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. बाल्च (1996), *ए पिरामिड आफ पावर्टी कानसेप्टस,* डब्लू.डब्लू.डब्लू.रिसर्चमेन्ट गेट।
2. टाउनसेन्ड (1996) *पावर्टी इन द यूनाइटेड किंगडम,* लन्दन, पेग्यूइन बुक्स
3. नाबार्ड (2017) : *रिपोर्ट ऑफ द टास्क फोर्स आन सपोर्टिव पालिसी एण्ड रेगुलेटरी फ्रेमवर्क फार माइक्रो फाइनेन्स,* मुंबई।
4. सेन, अर्मत्य (2009) : *पावर्टी एण्ड फेमाइन्स,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।